आत्मज्ञानी की पहचान

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,
पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

शरीर में आत्मा जन्म–जन्मान्तर के साथ रहती है। अज्ञान के कारण यह संयोग होता है। अज्ञान को ज्ञान के द्वारा दूर किया जा सकता है। ज्ञान के द्वारा आत्मा शुद्ध, बुद्ध और मुक्त होता है। मुक्त होने के बाद आत्मा सचिदानन्नद स्वरूप में स्थित हो जाता है। जीव का लौकिक सुख क्षणिक सुख है। आत्मा का अलौकिक सुख है। संसार रंगमंच है इसमें सभी प्राणी अपना कर्म भोगकर चला जाता है। यह परम्परा आदि अनन्त है। जीव संसार में रहता है। वह इसी को सत्य मानता है। उसे आत्मज्ञान होता ही नहीं। ज्ञानी व्यक्ति इस संसार में जल में कमल की भांति रहता है– जैसे कीचड़ में पड़ा हुआ कमल। कीचड से निर्लिप्त रहता है, वैसे ही आत्मज्ञानी इस संसार में रहता हुआ संसार के राग–द्वेषों से मुक्त रहता है। उसमें कर्ता भाव नहीं रहता। जो इस संसार में भाव नहीं रखता वह भव से पार हो जाता है। जो रोग–द्वेष रखता है वह बंधन में फंस जाता है। कबीरदासजी आत्मज्ञानी थे उन्हें यह ज्ञात था कि– **हम न मरब मरिहैं संसारा, हमको मिला जियावन हारा** अर्थात् हम नहीं मरेंगे क्योंकि हमें आत्मा का ज्ञान है। आत्मज्ञानी व्यक्ति अमर हो जाता है।

इस संसार में शरीर ही नष्ट होता है। शरीर भौतिक पदार्थों से बना हुआ है। हर भौतिक पदार्थ की काल सीमा होती है। उस काल सीमा का अतिक्रमण करने के पश्चात् भौतिक पदार्थ नष्ट हो जाता है। शरीर भौतिक है और आयुष्य कर्म क्षीण होते ही यह भी नष्ट हो जाता है। आत्मा एक शरीर को छोड़कर दूसरे नये शरीर में प्रवेश कर जाती है। आत्मा अजर अमर और अविनाशी है। शरीर नश्वर है। आत्मज्ञानी संसार में आसक्त नहीं होता। वह सभी प्रकार के बंधनों को मिथ्या समझता है। संसार माया है यहां पर सभी जीव अपने कर्मों का भुगतान करने के लिए आते हैं। जैसे ही कर्मों का परिणाम मिलता है उसको भुगतने के पश्चात् जीव अपने कर्माजन के अनुसार अन्य़त्र दूसरी योनियों में जन्म ग्रहण करता है। यदि कर्म अच्छा है तो अच्छी योनि प्राप्त होती है और यदि कर्म बुरा है तो निम्न योनियों में जन्म

ग्रहण करना पड़ता है। जन्म–मृत्यु का चक्र चलता रहता है। पुण्य–पाप का फल प्राप्त होता रहता है।

ववेक ही धर्म है। विवेक का अर्थ है– बुद्धि के अनुसार कार्य करना। विवेकी व्यक्ति जीवन में सुखी रहता है। जो बिना विचारे कार्य करता हैं वह पश्चाताप करता है। विवेकशील व्यक्ति धर्म, कर्म में विश्वास करता हैं और शास्त्रोंक्त विधि से कार्य करता है। ऐसा व्यक्ति मानव धर्म में विश्वास करता है और धर्म के मूलमन्त्र को जीवन में उतारता है। व्यवहारिक जीवन में भी विवेक का बहुत महत्व है। विवेक ही धर्म है। धर्म ही भारतीय संस्कृति का प्राण है। धर्म के कारण ही हम अध्यात्मवादी बने हैं। धर्म बहुत ही व्यापक शब्द है। इसके अंतर्गत भावों की शुद्धता, मन की निर्मलता और सात्विक विचार का अधिक महत्व है। धर्म मूलतः किसी वस्तु का सहज गुण है। जैसे पानी का धर्म शीतलता, अग्नि का धर्म उष्णता और पृथ्वी का धर्म गंध है। इसी प्रकार जितने भी पदार्थ हैं, उन सबका स्वाभाविक धर्म होता है। जब पदार्थों में विकृति उत्पन्न की जाती है तो उनके गुण धर्म भी बदल जाते हैं। आत्मा एक ऐसा तत्व है जिसमें किसी प्रकार की विकृति नहीं आती है। यह अपने स्वरूप में चैतन्य युक्त है, शेष जितने भी पदार्थ हैं, वे भौतिक तत्व हैं। उन पदार्थों में परिवर्तन, परिवर्धन होता रहता है। आत्मा और जड़ का जब संयोग होता है तो जड़ पदार्थ भी आत्मवत प्रतीत होने लगता है।

शरीर जड़ है और आत्मा चेतन। शरीर से जब आत्मा का संयोग होता है तो जड़ शरीर भी आत्मवत् प्रतीत होने लगता है। शरीर से अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के कार्य किये जाते हैं। मूलतः आत्मा के शुद्धि और अशुद्धि का कोई प्रश्न नहीं है। शरीर में शुद्धता और अशुद्धता देखी जाती है। यदि मानव अच्छा कर्म करता है तो पुण्यलोक की प्राप्ति होती है और यदि बुरा कार्य करता है तो उसे नरक की प्राप्ति होती है। इसीको ध्यान में रखकर यह बात कही गयी है कि विवेक ही धर्म है और धर्म आत्मा को शुद्ध करता है। आत्मा को न तो आंखों से देखा जा सकता है, न वाणी से कहा जा सकता है, न तो अन्य इन्द्रियों से उसे जाना जा सकता है, न तपस्या और कर्म से ही उसे जाना जा सकता है। जिसके द्वारा सारी ज्ञानेन्द्रियां अपने–अपने विषय का ज्ञान कराती हैं, उसे किस साधन से जाना जाय। इसलिये कहा गया है कि **'ज्ञानप्रसादेन तं पश्यते'** अर्थात् ज्ञान के द्वारा ही उसे जाना जा सकता है।

जप, तप निखिलकर्मानुष्ठान ये सारे साधन आत्मविषयक आचार में परिगणित हैं, किन्तु ये केवल चित्त शुद्धि तक ही सीमित हैं। पुरुष या आत्मा को चेतन तत्त्व तथा प्रकृति को अचेतन या जड़तत्त्व कहा गया है। पुरुष के स्वरूप को बतलाते हुये यहां कहा गया है कि पुरुष नित्य, साक्षी, केवल, निस्त्रैगुण्य, माध्यस्थ उदासीन, द्रष्टा और अकर्त्ता है। पुरुष चेतन है। चेतन ही विषयों का ज्ञाता तथा द्रष्टा होता है। इसे अचेतन नहीं प्राप्त कर सकता। आत्मा ही वह द्रव्य है जिसमें बुद्धि, सुख–दुःख, राग–द्वेष, इच्छा प्रयत्न आदि गुण रहते हैं। मनुष्य का आध्यात्मिक विकास तभी सम्भव है, जब वह अपना आचरण शुद्ध रखे और संयम नियम का पालन करता रहे।